मङ्गल समर्पण

4

पण्डित कैलाशचन्द्र : एक असाधारण व्यक्तित्व

(1) पण्डित कैलाशचन्द्र : संक्षिप्त जीवनवृत्त (2) एक साक्षात्कार : श्री पवन जैन से

'कैलाश' यशोगाथा

मध्यलोक के जम्बुद्वीप में, भरतक्षेत्र है अतिसुखकार।
उसमें भी उत्तरभारत की, मिट्टी में हैं रत्न अपार॥
गाँव टीकरी इक छोटा सा, पिताश्री हैं मिट्ठनलाल।
जन्म दिया भर्तोदेवी ने, एक सलोना चेतन लाल॥
नाम रखा कैलाशचन्द, मानो कैलाश हिमालय हो।
अरे! हिमालय चरणों की रज, तुम तो इक सिद्धालय हो॥
पूर्व संस्कारों ने ही कुछ, अद्भुत छवि दिखलायी है।
मथुरा चौरासी में आपने, धार्मिक शिक्षा पायी है॥
विमलादेवी से परिणय कर, लौकिक रीति निभायी है।
किन्तु अन्तर प्रेम पटल पर, मुक्तिवधु ही भायी है॥
दिल्ली और लाहौर, बुलन्दशहर में करते व्यापार।
पुण्य-पाप के घटा-जोड़ में, भाया नहीं ये कारोबार॥
होनहार के प्रबल वेग से, आप सोनगढ़ आये हैं।
कहानगुरु के दर्शन से, मानो निजदर्शन पाये हैं॥
कहानगुरु की दिव्यदेशना, पीते रहते थे दिन-रात।
अज्ञान तिमिर की घटा हटी, अन्तर रवि जागा हुआ प्रभात॥
कहानगुरु के गणधर बनकर, तुमने अलख जगाया है।
चप्पा-चप्पा है स्वतन्त्र, यह गीत आपने गाया है॥
सत्य, निडर, निर्लोभी वक्ता, होकर बिगुल बजाया है।
तुमने जग से कुछ नहीं लेकर, जग को सदा लुटाया है॥
कहानगुरु के सत् मन्त्रों को, तुमने सरल बनाया है।
अष्ट भाग में उन्हें पिरोकर, पुस्तकबद्ध बनाया है॥
गाँव-गाँव में मोक्षपुरी का, विद्यालय खुलवाया है।
कलिकाल में, मङ्गलायतन सा, तीर्थधाम बनवाया है॥
पवन जैन है पुत्र तुम्हारे, छवि तुम सी ही पायी है।
मुमुक्षुजन के भाग्य जगे हैं, मङ्गल गंगा आयी है॥
तुम सौ-सौ वर्षों तक जीओ, यही कामना करते हैं।
आज तुम्हारा अभिनन्दन है, हम अभिनन्दन करते हैं॥

— पण्डित संजय शास्त्री, तीर्थधाम मङ्गलायतन

मेरे जीवनशिल्पी :—

पण्डित कैलाशचन्द जैन : संक्षिप्त जीवनवृत्त

— देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राज.)

भारत की वसुन्धरा, अनादि से ही तीर्थङ्कर भगवन्तों, वीतरागी सन्तों, ज्ञानी-धर्मात्माओं एवं दार्शनिक / आध्यात्मिक चिन्तकों जन्मदात्री रही है। इसी देश में वर्तमान काल में भगवान ऋषभदेव से लेकर महावीर तक चौबीस तीर्थङ्कर हुए हैं। वर्तमान में भगवान महावीर के शासनकाल में धरसेन आदि महान दिगम्बर सन्त, श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्य आदि महान आध्यात्मिक सन्त, इस पवित्र जिनशासन की पताका को दिग्दिगन्त में फहराते रहे हैं।

जहाँ वीतरागी सन्तों ने आत्मानुभूति में कलम डुबो-डुबोकर वीतरागी सत्साहित्य / जिनागम की रचना करके भव वन में भटकते जीवों को शाश्वत् सुख का मार्ग दर्शाकर, अनन्त उपकार किया है, वहीं उनके मार्गानुसारी अनेकों गृहस्थ विद्वानों ने भी स्वयं आत्म-साक्षात्कारपूर्वक उस जिनागम के रहस्यों का उद्घाटन करके, जैनशासन की गौरवशाली परम्परा को जीवन्त रखा है।

वर्तमान शताब्दी में जिनेन्द्र भगवन्तों, वीतरागी सन्तों एवं ज्ञानी धर्मात्माओं द्वारा उद्घाटित इस शाश्वत् सत्य को, जिन्होंने अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से स्वयं आत्मसात करते हुए पैंतालीस वर्षों तक अविरल प्रवाहित अपनी दिव्यवाणी से, इस विश्व में आध्यात्मिक क्रान्ति का शंखनाद किया - ऐसे परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी से आज कौन अपरिचित है ? पूज्य गुरुदेवश्री ने क्रियाकाण्ड की काली कारा में कैद, इस विशुद्ध जिनशासन को अपने आध्यात्मिक आभामण्डल के द्वारा न मुक्त ही किया, अपितु उसका ऐसा प्रचार-प्रसार भी किया जिसने मानों इस विषम पञ्चम काल में तीर्थङ्करों का विरह भुलाकर, भरतक्षेत्र को विदेहक्षेत्र और पञ्चम काल को चौथा काल ही बना दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री के तत्त्वज्ञान से प्रभावित होकर अध्यात्म मनीषी पण्डित कैलाशचन्द जैन ने अपना सम्पूर्ण जीवन, इस वीतरागी तत्त्वज्ञान की आराधना, उपासना, एवं प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित कर दिया। भारतवर्ष की सम्पूर्ण मुमुक्षु समाज में 'बुलन्दशहरवाले पण्डितजी' और 'डण्डेवाले पण्डितजी' के नाम से प्रसिद्ध पण्डित कैलाशचन्द जैन निस्पृह, निर्लेप, स्पष्टवादी, सिद्धान्तों की कीमत पर कभी न झुकनेवाले, साधर्मी वात्सल्य से ओतप्रोत मनीषी विद्वान हैं, जिनका सम्पूर्ण मुमुक्षु समाज पर महा उपकार वर्तता है।

मङ्गल समर्पण

पण्डित कैलाशचन्द जैन का जन्म, आज से लगभग 99 वर्ष पूर्व ग्राम टिकरी, जिला मेरठ में पिता मिट्ठनलाल जैन के घर, माता श्रीमती भरतोदेवी की कोख से हुआ था। आपके अतिरिक्त श्री बाबूराम जैन, श्री शीलसागर – ये दो भाई तथा श्रीमती जैनमती जैन और श्रीमती शीलमती जैन, इन दो बहनों सहित आप पाँच भाई–बहिन थे। आपके पिता सर्राफे का कार्य किया करते थे। जब पण्डितजी की उम्र पाँच वर्ष की थी, तब व्यवसाय में भारी हानि होने से पिताश्री ने दुकान आदि बेचकर सबका कर्ज चुका दिया। आर्थिक विषमता की इस परिस्थिति में भी पिताश्री की नेकनीयत का प्रभाव पण्डितजी पर जीवनभर रहा। इसी समय आपके यहाँ भागीरथदास वर्णी आदि त्यागीगण पधारे थे, उनके साथ पधारे हुए श्री गंगाप्रसादजी एवं ब्रह्मचारी मूलचन्दजी के कहने से आपके पिताश्री ने छह वर्ष की उम्र में आपको मथुरा चौरासी में संचालित विद्यालय में अध्ययन करने हेतु भेज दिया। वहाँ आपने तीन वर्ष तक अध्ययन किया। इसी बीच आपकी बड़ी बहिन की शादी हुई किन्तु आर्थिक विषमतावश आप उस शादी में शामिल नहीं हो सके। तत्पश्चात् आपके बड़े भाई मथुरा आकर आपको घर ले गये और जब पिताजी ने दोबारा वहाँ भेजना चाहा तो आपने स्पष्टरूप से इनकार कर दिया। अत: आपको सहारनपुर में स्थित जम्बू विद्यालय में अध्ययन हेतु भेज दिया गया। जहाँ आपने तीन साल तक अध्ययन किया। वहीं पर रहकर आपने रत्नकरण्डश्रावकाचार, द्रव्यसंग्रह, धनञ्जय नाममाला, मोक्षशास्त्र इत्यादि की सोलापुर बोर्ड की परीक्षा उत्तीर्ण की।

प्रारम्भ से ही स्वाभिमानी एवं निरपेक्षवृत्ति के धनी होने से आप सहारनपुर में ट्यूशन इत्यादि करके अपना खर्च स्वयं वहन करते थे, साथ ही बची हुई राशि अपनी माताजी को भेजते थे। आपने इसी समय एक बार 'विद्या' विषय पर अपना ओजपूर्ण भाषण प्रस्तुत करते हुए कहा — विद्या विनय से आती है और जैसे छोटा तिनका धीरे–धीरे बहता हुआ समुद्र में जा मिलता है, वैसे ही विद्या बड़े–बड़े राजा–महाराजाओं से मुलाकात कराती है। आहार, निद्रा, भय, और मैथुन तो पशु भी करता है और मनुष्य भी। यदि मनुष्य में विद्या नहीं है तो वह पशु ही है।

तत्पश्चात् सहारनपुर विद्यालय के कुछ अप्रिय प्रसंगों के कारण आपने यहाँ अध्ययन नहीं करने का निर्णय लिया और बनारस तथा मुरैना विद्यालय में अध्ययन का प्रयत्न किया किन्तु सफलता नहीं मिली। अत: यहाँ से लाहौर पहुँच गये। वहाँ आपके भाई पहले से रहते थे, जो वापस आपको विद्यालय में लेकर आये किन्तु आप पुन: लाहौर पहुँच गये और अपना

स्वतन्त्र व्यवसाय प्रारम्भ किया। जिसमें सफलता प्राप्त हुई और उस समय अपनी आमदनी से घर पर भी रुपये भेजने लगे। इसी समय एक बार आपको बीमारी ने आ घेरा और ऑक्सीजन चढ़ाई गयी। आपने अपने बचने की आशा न देखकर एक पर्चे पर यह लिखकर दे दिया कि यदि मैं जीवित न रहूँ तो मेरा सारा सामान बेचकर मन्दिर में दे दिया जाये।

आपने यहाँ रहते हुए हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की और तत्पश्चात् प्रभाकर परीक्षा उत्तीर्ण की। कालान्तर में भारत-पाकिस्तान के विभाजन के कारण आप लाहौर का परित्याग करके वापस स्वदेश आये, पहले अम्बाला और फिर बुलन्दशहर आकर स्थित हुए। जहाँ आपने 'आजाद ट्रेडिंग कम्पनी' नाम से स्टेशनरी का व्यवसाय शुरु किया जो आज तक बुलन्दियों को छू रहा है।

आपका विवाह 19 वर्ष की उम्र में दिल्ली निवासी श्री सुगनचन्द्र जैन की पुत्री विमलादेवी के साथ सम्पन्न हुआ। जिससे आपको चार पुत्रियाँ और दो पुत्र प्राप्त हुए। जिनमें से वर्तमान में श्रीमती कुसुम जैन, श्रीमती कान्ता जैन, श्रीमती शान्ती जैन, एवं एक मात्र पुत्र श्री पवन जैन विद्यमान हैं। जो अपने पिताश्री के पदचिह्नों पर चलते हुए लौकिक उन्नति के साथ-साथ वीतरागी जिनशासन की प्रभावना के लिए भी यत्नशील हैं।

आपके बड़े बहनोई श्री छोटेलाल जैन का देहावसान हो जाने से आपकी बड़ी बहिन श्रीमती जैनमती जैन एवं उनके पुत्र श्री शीतलप्रसाद जैन, बुलन्दशहर, जो उस समय मात्र तीन वर्ष के थे, को आपने पूरा सम्बल प्रदान किया और अपने परिवार में अपने पुत्र की तरह उनका भी पालन-पोषण, शिक्षण, एवं व्यवसाय कराके आत्मनिर्भर बनाया। जो आपके हृदय में विद्यमान पारिवारिक वात्सल्य को प्रतिबिम्बित करता है।

सन् 1952 में आपने सम्मेदशिखर की यात्रा की और तत्पश्चात् गिरनार सिद्धक्षेत्र की यात्रा करने का भाव जागृत हुआ। दूसरे ही दिन आपने दिल्ली से चन्द्रकीर्ति यात्रासंघ में अपनी सीट बुक करा ली और तीन महीने की यात्रा के लिए निकल पड़े। अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ की यात्रा करके जब यात्रासंघ रवाना हो रहा था, तब आपको अनायास आभास हुआ कि आज यात्रा की बस पलट जायेगी, किन्तु किसी ने आपकी बात पर ध्यान नहीं दिया, और ठीक एक बजे बस उलट गयी, किन्तु आप सुरक्षित रहे। उसी समय आपने समस्त चमड़े की वस्तुओं का त्याग कर दिया और पावागढ़ की ओर रवाना हुए, जहाँ आपने भगवान की प्रतिमा के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य अंगीकार कर लिया। यह जनवरी 1953 की घटना है।

मङ्गल समर्पण

यात्रा करते हुए मार्ग में एक मुनिराज के दर्शन हुए आपने सर्व प्रथम उनकी स्तुति करते हुए जिनदीक्षा प्रदान करने की बात कही, तब उन्होंने कहा कि आप मन्दिर जाते हैं; अतः सम्यग्दर्शन तो आपको है ही, अभी आप दूसरी प्रतिमा के व्रत ले लें। यह सुनते ही आपको लगा की यह बात समीचीन नहीं है; अतः वहाँ से परान्मुख हो गये।

जब यात्रासंघ अहमदाबाद पहुँचा तो धर्मशाला के ऊपर चैत्यालय में कुछ साधर्मी, कानजीस्वामी और सोनगढ़ का जिक्र कर रहे थे। कोई कह रहा था वे महान सन्त हैं, तो कोई कह रहा था महान धोखा है। उसी समय पण्डितजी को लगा कि अवश्य ही कानजीस्वामी महान सन्त हैं और मुझे उनसे मिलना चाहिए। आपने उस समय गुरुदेवश्री का नाम पहली बार सुना था। गुरुदेवश्री से मिलने की व्यग्रता में आपने सोनगढ़ की ओर प्रस्थान कर दिया और जैसे ही सोनगढ़ पहुँचे, आपको लगा मानो बहुत भारी बोझ उतर गया हो। नित्यक्रिया से निवृत्त होकर आप गुरुदेवश्री के प्रवचन में पहुँचे। यद्यपि अपूर्व शान्ति तो अनुभूत हुई परन्तु प्रवचन गुजराती भाषा में होने से कुछ भी समझ में नहीं आया, तथापि यह अवश्य लगा कि जिसकी मुझे तलाश थी, वह मुक्तिविधाता मुझ मिल गया है। दो दिन वहाँ रहने के पश्चात् यात्रासंघ की बस वहाँ आ पहुँची और आपको न चाहते हुए भी सोनगढ़ से वापस जाना पड़ा। जहाँ से आपने गिरनार की यात्रा की और भगवान नेमिनाथ की पाँचवीं टोंक पर आजन्म ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा को फिर से दोहराया। तत्पश्चात् यात्रा समाप्त करके, जब बुलन्दशहर पहुँचे और आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा का सबको परिज्ञान हुआ तो आपकी आलोचना भी कम नहीं हुई, किन्तु अचल मेरु के समान अडिग वृत्ति के धनी पण्डितजी को अचलायमान कर सके – इस विश्व में भला इतनी सामर्थ्य किसकी थी ?

कुछ समय बुलन्दशहर रहने के पश्चात् फिर से डेढ़ महीने के लिये सोनगढ़ पहुँचे किन्तु गुजराती भाषा की वजह से कुछ भी समझ में नहीं आया, तथापि अन्तरंग में यह बात दृढ़ हो गयी कि मेरा कल्याण होने में यदि कोई निमित्त है तो वे पूज्य गुरुदेवश्री ही हैं। तत्पश्चात् 1956में ढाई महीने के लिए सोनगढ़ पहुँचे और श्री रामजीभाई, श्री खेमचन्दभाई आदि विद्वानों से सम्पर्क हुआ और यहाँ से आपके अध्ययन, मनन, चिन्तन का सिलसिला प्रारम्भ हुआ, जिसकी परिणति जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के आठ भाग और सम्पूर्ण देश में कक्षा पद्धति से तत्त्व प्रचार के रूप में हमारे सामने विद्यमान है। आप, धुन के धनी तो प्रारम्भ से ही हैं; अतः सोनगढ़ की व्यस्त दिनचर्या में भी प्रतिदिन रात्रि बारह बजे से पहले सोना नहीं और तीन बजे उठकर अपने कार्य में –स्वाध्याय में लग जाना आपकी दिनचर्या का अंग बन गया था। वहीं

आपने साधर्मी बन्धुओं की कक्षा भी प्रारम्भ की, जिसका लाभ देश के बड़े-बड़े विद्वान भी उस समय लिया करते थे।

आपकी दिनचर्या में जहाँ अध्ययन, अध्यापन, प्रचार आदि का महत्वपूर्ण स्थान बन गया था, वहीं आप अपने पारिवारिक-सामाजिक दायित्वों के प्रति भी सदैव सजग रहे। आपके सत् प्रयत्नों से सिकन्दराबाद में एक विद्यालय की स्थापना हुई, जिसके लिए आपको भूख हड़ताल / सत्याग्रह तक करना पड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री को अपना जीवन-आधार बनाने के पश्चात् सामाजिक विरोध का भी आपको सामना करना पड़ा। अनेक विषम परिस्थितियों के उपस्थित होने पर भी आप अपनी श्रद्धा में दृढ़ रहे और जब पूज्य गुरुदेवश्री, संघसहित आपके गृहनगर बुलन्दशहर में पधारे, तब तो मानो आपके आँगन में कल्पवृक्ष ही आया — ऐसी भावनापूर्वक आपने अपना तन-मन-धन पूज्य गुरुदेवश्री की भक्ति में समर्पित किया और गुरुदेवश्री का वह प्रवास एक यादगार प्रवास के रूप में इतिहास में उल्लेखित हो गया।

निवृत्ति की भावना वृद्धिंगत होने से 16-4-1965 को दुकान का सम्पूर्ण दायित्व श्री शीतलप्रसाद जैन को सम्हलाकर आपने तत्त्वप्रचार हेतु सम्पूर्ण देश का भ्रमण किया और गुरुदेवश्री से प्राप्त मुक्तामोतियों को देश के अनेक मण्डलों में जाकर बिखेरा। उत्तरप्रदेश, उत्तरांचल, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, बंगाल आदि अनेक राज्यों के अनेक मण्डलों में आपने वीतरागी तत्त्वज्ञान का प्रचार-प्रसार कर, वहाँ के मुमुक्षुओं को सुदृढ़ बनाया है। आपकी प्रेरणा से दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल देहरादून ने स्वाध्याय भवन का निर्माण तथा दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल बिजौलियां द्वारा श्री सीमन्धर जिनालय एवं स्वाध्याय भवन का निर्माण कराया है; साथ ही अनेकों स्थानों पर स्वाध्याय भवनों एवं जिनालयों को आपके प्रयासों से जीवन्तता प्राप्त हुई है।

आपके पदचिह्नों पर चलते हुए आपके सुयोग्य पुत्र श्री पवन जैन ने आपकी भावनाओं को साकार करने के उद्देश्य से आपके स्वप्न को साकार करते हुए तीर्थधाम मङ्गलायतन की स्थापना की, जो आज सम्पूर्ण विश्व की मुमुक्षु समाज की अमूल्य धरोहर बन चुका है और पूज्य गुरुदेवश्री के द्वारा प्रतिपादित जिनशासन की गौरवमयी परम्परा को आगे बढ़ाने का कार्य निरन्तर अबाध गति से कर रहा है। इस तीर्थधाम में स्थित चार जिनमन्दिर एवं जिनवाणी मन्दिर, स्वाध्याय भवन तथा धन्य मुनिदशा प्रकल्प, आदरणीय पण्डितजी के हृदय में विद्यमान

वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के प्रति भक्ति के अमर स्मारक हैं, तो यहाँ संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के नन्हे-मुन्ने मङ्गलार्थी, आपके हृदय में व्याप्त जिनशासन की प्रभावना का साकार स्वप्न हैं।

'विद्या से ही मुक्ति की प्राप्ति होती है', इस सिद्धान्त को आत्मसात करते हुए आपके स्वप्न का साकाररूप मङ्गलायतन विश्वविद्यालय है। जहाँ उच्चस्तरीय लौकिक शिक्षा के साथ-साथ नैतिक संस्कारों के अभिसिंचन का भी प्रयास है। इस विश्वविद्यालय परिसर में स्थित जिनमन्दिर और कीर्तिस्तम्भ, जिनशासन की अमर गाथा को युगयुगान्तर तक जीवन्त रखने में समर्थ होंगे।

आज, जबकि पण्डितजी एक शताब्दी पूर्ण करने की दिशा में अग्रसर हैं, सुनने एवं देखने की शक्ति अत्यन्त क्षीण है, तथापि उनके अन्त:स्थल में वीतरागी तत्त्वज्ञान और अपने मुक्तिविधाता पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति जो भक्तिभाव दृष्टिगोचर होता है, वह उनके सम्पूर्ण जीवन की आत्मसाधना को आलेखित करता है।

यह मेरा परम सौभाग्य रहा है कि मुझे पूज्य पण्डितजी द्वारा अपने नगर बिजौलियां में तत्त्वज्ञान अर्जित करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री के साक्षात् दर्शनों के सौभाग्य से वंचित रहने पर भी, पूज्य पण्डितजी, मेरे जीवन में मानों गुरुदेवश्री का अवतार लेकर आये। आपश्री की पावन प्रेरणा से पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति भक्ति का संचार हुआ, जिसके फलस्वरूप गुरुदेवश्री के गुजराती प्रवचनों का हिन्दी में अनुवादित करने का सौभाग्य प्राप्त कर सका। वास्तव में पण्डितजी ने मेरे जीवन का कायाकल्प किया है, सचमुच वे मेरे जीवनशिल्पी हैं।

आदरणीय पण्डितजी दीर्घायु हों और उनकी छत्रछाया में हम सभी निरन्तर आत्मकल्याण के पथ पर आगे बढ़ते रहें — इसी भावना के साथ कहानगुरु के इस महान सपूत के प्रति अपनी अनगिनत विनयांजलि समर्पित करता हूँ। ●●

निस्पृह एवं असाधारण व्यक्तित्व : पण्डित कैलाशचन्द्र जैन

एक साक्षात्कार : श्री पवन जैन से

पण्डित कैलाशचन्द्र जैन के पारिवारिक, व्यावसायिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक जीवन के सन्दर्भ में डॉ० राकेश जैन, नागपुर एवं देवेन्द्रकुमार जैन, मङ्गलायतन द्वारा उन्हीं के सुपुत्र श्री पवन जैन से लिया गया साक्षात्कार, जहाँ पण्डितजी के अन्तर-बाह्य व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित करता है, वहीं पिता-पुत्र के धार्मिक एवं लौकिकव्यवहार को भी प्रदर्शित करता है।

'मेरे पूज्य पिताश्री पण्डित कैलाशचन्द्रजी द्वारा बालपन में दिये गए धर्म के संस्कारों ने मुझे एक बेड़ी में बाँधे रखा है। शायद यही कारण है कि मैं अपने जीवन में, अनेक वर्षों तक धर्म से दूर रहकर भी, उतना दूर नहीं जा पाया कि जहाँ से मेरा वापस लौटना सम्भव न हो।'

'आज मैं जो कुछ भी हूँ, उसका श्रेय पूज्य पिताजी को ही है', – ये विचार श्री पवन जैन ने तब व्यक्त किये, जब उनसे पूछा गया कि हम आदरणीय पण्डितजी की जन्म शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित 'मङ्गल-समर्पण' ग्रन्थ में प्रकाशन में उद्देश्य से आपसे एक साक्षात्कारवार्ता लेना चाहते हैं। पण्डितजी को समाज पर बहुत उपकार है और उन्हें पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धर्मप्रभावना रथ के वयोवृद्ध सारथी के रूप में जाना जाता है; अत: हम चाहते हैं कि उनके जीवन के सभी पहलू पाठकों तक पहुँचें और वे उनसे प्रेरणा प्राप्त करें – यह इस साक्षात्कार का उद्देश्य है।

श्री पवन जैन ने सहर्ष अपनी स्वीकृती प्रदान की, तब उनके साथ हुई चर्चा, पाठकों के प्रेरणार्थ यहाँ दी जा रही है।

प्रश्न : सर्व प्रथम आप पण्डितजी के पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में प्रकाश डालें?

पवन जैन : पण्डितजी की माता का नाम श्रीमती भरतोदेवी जैन एवं पिता श्री मिट्ठनलाल थे। वे विशेष पढ़ी-लिखी नहीं थी, अत: जब हम पूछते – दादी! तुम्हारी उम्र कितनी है? तो कहती थी – चार बिस्सी से ज्यादा है। उनका स्वर्गवास 80 या 90 वर्ष की उम्र में हुआ और अन्तिम 20-22 वर्ष तक आँखों में ज्योति नहीं रही। उनकी मृत्यु हमारे बुलन्दशहर के मकान पर हुयी थी। वे बहुत ही भद्रपरिणामी महिला थीं।

प्रश्न : दादाजी के बारे में बतायें ?

पवन जैन : वे टीकरी में रहते थे, जो पहले जिला–मेरठ और अब बागपत में है, काफी बड़ा गाँव है। मैं वहाँ एक बार 2004 में, स्वप्निल की शादी की पत्रिका देने हेतु शाहदरा के श्री सेवारामजी के साथ, श्री अशोक लुहाड़िया को लेकर गया था। मेरा भाव था कि मैं मूलत: जिस गाँव का हूँ, वहाँ के लोग हमारी पारिवारिक खुशियों में आयें और वहाँ से काफी लोग आये भी।

मुझे यह भाव भी था कि मैं वहाँ के जैनसमाज के लोगों से मिलूँ, कोई मेरे पिता या परिवार के बारे में जानता हो तो उससे भी मिलूँ और किसी के यहाँ भोजन करूँ। वहाँ जाने पर देखा कि वहाँ एक मन्दिर था, जिसे कोई देखनेवाला नहीं था। हमने वहाँ दर्शन करके, भोजन किया। जब मन्दिर के बारे में कुछ पूछा तो किसी ने वहाँ के बड़े मन्दिर के बारे में बताया। वहाँ कुछ लोग आये, हमने अपना परिचय दिया – कि पण्डित कैलाशचन्द्र मेरे पिता हैं, उनके बड़े भाई बाबूराम और छोटे शीलसागर थे; हमारे दादा मिट्ठनलाल थे। यहाँ पर उनकी सर्राफे की दुकान थी..... किन्तु वहाँ कोई जानता नहीं था। तब मेरे कहने पर वहाँ के सबसे बुजुर्ग व्यक्ति से सम्पर्क कराया गया। उनसे बात की तो वे मेरे चाचा के दोस्त थे, उन्होंने सब बताया, तो हमने उनके पैर छुए और कार्ड दिया।

तब से आज तक वहाँ के किसी भी मन्दिर के कार्यक्रम में वे लोग हमारा नाम छापते हैं और बुलाने आते हैं। एकबार मैंने स्वप्निल एवं मुकेशजी को वहाँ भेजा भी था।

पिताजी के मुख से दादाजी के बारे में जो सुना वह यह है कि उनका सर्राफे का काम था, बहुत बड़े व्रती थे और अपने को व्रती श्रावक मानते थे। उन्हें उस समय सोने के कार्य में काफी नुकसान हुआ; उन्होंने अपनी दुकान आदि बेचकर सबका कर्जा चुका दिया। दादाजी की इस नेकनीयत का पूज्य पिताजी एवं मुझ पर पूरा प्रभाव है। मुझे दादाजी के उम्र के विषय में जानकारी नहीं है।

प्रश्न : पण्डितजी का जन्म कब हुआ था ?

पवन जैन : इस बारे में वे स्वयं दो बातें कहते थे – सन् 1913 या 1916में। इस तरह पक्का पता नहीं है। हमने जब मङ्गलायतन बनने से पूर्व पहली परिचय पुस्तक प्रकाशित की थी, उसमें उनका जन्म वर्ष प्रकाशित किया है।

प्रश्न : पण्डितजी के भाईयों के बारे में आपको कोई जानकारी हो तो ....

पवन जैन : उनके बड़े भाई बाबूरामजी थे, जो अम्बाला और फिर दिल्ली रहे, उनकी पुत्री अभी दिल्ली में हैं। दूसरे नम्बर के पिताजी स्वयं हैं और तीसरे शीलसागरजी थे। जो पहले सहारनपुर और बाद में हैदराबाद चले गये। वहाँ मेरा जाना-आना था। अब पण्डितजी के दोनों भाई नहीं हैं।

शीलसागरजी के चार पुत्र एवं पुत्री हैं जो सहारनपुर में है। चाचा से मेरा बहुत प्रेम था।

प्रश्न : पण्डितजी की बहिनों के बारे में ......

पवन जैन : दो बहिनें थी। जैनमती जो शीतलप्रसादजी, बुलन्दशहरवालों की माँ थी। दूसरी शीलमति, जो मुजफ्फरनगर रहती हैं। हमारे छोटे फूफाजी श्री ओमप्रकाश के दो पुत्र हैं, जिनमें एक मुकेशजी जो यहीं हैं, दूसरे विनोद जैन मुजफ्फरनगर में है। एक पुत्री शशि जैन है, जो दिल्ली में रहती हैं। पण्डित सरनारामजी हमारे छोटे फूफा के बड़े भाई थे, जिन्होंने पञ्चाध्यायी आदि की टीका लिखी है।

प्रश्न : पण्डितजी का विवाह कब हुआ ?

पवन जैन : उनका विवाह 19 वर्ष की उम्र में दरियागंज निवासी श्री सुगनचन्दजी की सुपुत्री विमलादेवी के साथ हुआ। हमारी माता श्रीमती विमलादेवी को धर्म का विशेष ज्ञान तो नहीं था, किन्तु वे भद्रपरिणामी थी। भाद्रमाह में बेला करना, व्रत करना आदि रहता था। जब मैं बी.ए. में था, तब उनका स्वर्गवास हुआ; उस समय मैं 17 वर्ष का था।

प्रश्न : अपने भाई-बहनों के सम्बन्ध में ......

पवन जैन : भाई के सम्बन्ध में मुझे ज्यादा ज्ञात नहीं है, इतना पता है कि मेरा एक बड़ा भाई था। हम भाई-बहनों में सबसे बड़ी कुसुम, कान्ता, फिर तीसरे नम्बर पर भाई, फिर शान्ति, विनय और मैं स्वयं, इस तरह हम छह भाई-बहिन थे। भाई का बचपन में ही स्वर्गवास हो गया था।

प्रश्न : अपने बारे में भी कुछ जानकारी दीजिये ?

पवन जैन : मेरा जन्म बुलन्दशहर का है, सन् 1951 में जन्म हुआ था और दिसम्बर 1969 में शादी हुयी। मैंने बुलन्दशहर में ही अध्ययन किया है। हिन्दी साहित्य में स्नातकोत्तर डिग्री ली है।

प्रश्न : पण्डितजी का प्रारम्भिक जीवन कैसा था ?

पवन जैन : पिताजी सदा ही कार्य के प्रति पूर्ण निष्ठावान रहे, जब वे बाहर से आते, तब पूरी मेहनत से कार्य करते और निश्चित समय पर चले जाते थे, एकदम निस्पृह रहते थे।

प्रश्न : पण्डितजी की शिक्षा कहाँ हुई ?

पवन जैन : पहले 6 वर्ष की उम्र में मथुरा और तत्पश्चात् सहारनपुर में उन्होंने अध्ययन किया। बाद में वे लाहौर चले गये, जहाँ व्यवसाय के साथ-साथ शिक्षा भी जारी रखी।

प्रश्न : लाहौर में व्यवसाय कैसे शुरु किया ?

पवन जैन : जब वे लाहौर पहुँचे तो उनके पास मात्र एक रुपया था। उनकी व्यापारिक बुद्धि थी। उन्होंने चार आने के बारह रुमाल खरीदे और बेचे, इस प्रकार शाम तक पाँच रुपये कमाये। इस तरह धीरे-धीरे उन्होंने गली अनारकली में स्टेशनरी की दुकान की। उन्हें वहाँ अन्त में सीमेन्ट की एजेन्सी मिल गयी। उनको लाखों रुपये की आमदनी होने लगी। सीमेन्ट आता था और सीधे बिल्टी बिक जाती थी। इस तरह बहुत पैसा कमाया। वहाँ एक बार भयंकर बीमार भी हुए।

वहाँ पर वे नेहरुजी आदि से भी मिले, लेकिन व्यक्तिगत सम्पर्क रहे हों – ऐसा मुझे पता नहीं है।

प्रश्न : लाहौर से वापसी कब हुई ?

पवन जैन : उन्होंने अपने परिवार को तो देश विभाजन से पहले भेज दिया और स्वयं बाद में मुसलमान के वेष में आये। उनके साथ वहाँ मेरी माँ, दो बहिनें, शीतलप्रसादजी आदि थे।

प्रश्न : वहाँ की सम्पत्ति आदि का क्या हुआ ?

पवन जैन : वह सब वहाँ छोड़ आये। हमारे चचेरे नाना केदारनाथ, कस्टोडियन विभाग में थे, जो बुलन्दशहर में थे। उनके माध्यम से कस्टोडियन डिपार्टमेन्ट से उन्हें तीन हजार रुपये में मकान मिला। बुलन्दशहर में जब पण्डितजी, मन्दिर दर्शन करने गये, वहाँ श्री विशम्भरदासजी के पास मन्दिरजी की एक दुकान खाली थी। उन्होंने उनसे दुकान लेकर स्टेशनरी का व्यवसाय शुरु किया, जो आजाद ट्रेडिंग कम्पनी के नाम से काफी बड़ा हो गया।

प्रश्न : क्या पण्डितजी ने राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में भी कोई योगदान दिया था ?

पवन जैन : इस सम्बन्ध में मुझे कुछ विशेष तो ज्ञात नहीं है, परन्तु इतना स्वयं पिताजी

के मुँह से अवश्य सुना है कि लाहौर से आने के बाद उन पर राष्ट्रप्रेम की धुन सवार हुयी और वे काँग्रेस में भी शामिल हुए थे। स्वतन्त्रता दिवस पर उन्होंने दिल्ली में राष्ट्रीय झण्डे भी बाँटे।

प्रश्न : लाहौर से वापस आने के बाद बुलन्दशहर से पूर्व वे कहाँ–कहाँ रहे और किस प्रकार अपना जीवन निर्वाह किया।

पवन जैन : पण्डितजी, अर्थात् मेरे पिता प्रारम्भ से ही कठोर परिश्रमी, धुन के धनी एवं कार्य के प्रति निष्ठावान तो रहे ही हैं। उन्होंने लाहौर से दिल्ली तत्पश्चात् बुलन्दशहर आकर स्टेशनरी के व्यवसाय से अपने व्यवसायिक जीवन का प्रारम्भ किया।

इनके साथ शीतलप्रसादजी तो शुरु से ही रहे। जब हमारे फूफा का स्वर्गवास हुआ, तब वे मात्र तीन वर्ष के थे। पिताजी ने तब से उन्हें अपने साथ रखा एवं पूरा पारिवारिक सम्बल एवं सम्मान दिया। जब पिताजी बाहर होते तो शीतलभाई साहब पूरी लगन से कार्य करते थे। आगे चलकर पिताजी ने शीतलप्रसादजी को अपना भागीदार घोषित कर दिया।

प्रश्न : आपकी बहिनों का विवाह......

पवन जैन : बड़ी बहिन कुसुम की शादी केशवलालजी से, दूसरी बहिन कान्ता की शादी मोतीलालजी से, जो केशवलाल जी के छोटे भाई थे, उनसे हुई। केशवलालजी धार्मिक विचारधारा के थे, बस इसी बात से प्रभावित होकर पिताजी ने दोनों भाईयों से दोनों बहिनों का विवाह किया। बुलन्दशहर में ही बद्रीप्रसाद के पुत्र कान्तिप्रसाद थे, उनसे शान्ति का विवाह किया। देहरादून में अरुणकुमार जैन से विनय (चौथी बहिन) का विवाह कर दिया। जो अब नहीं है, सभी लोग अभी अच्छी स्थिति में हैं।

मैं आपको यह भी बताना चाहता हूँ कि पिताजी ने अपने दामादों को सदा साधर्मी की नजर से देखा है; रिश्तेदारी की दृष्टि हमेशा गौण रही है।

प्रश्न : आपने अपने पैतृक व्यवसाय को क्यों नहीं चुना?

पवन जैन : मुझे लगता था कि इस स्टेशनरी के कार्य में मेहनत बहुत है; अतः मुझे इण्डस्ट्री लगाना चाहिए। हमारे सुसराल में स्कूटर के ताले बनाने का कार्य होता था, हमने उनसे बात की तो उन्होंने भी सहमति दी। उस समय हमें अपने घर से पच्चीस हजार रुपये फैक्ट्री के लिए और चार सौ रुपये महीना घर खर्च के लिए दिये गये। मैं 13 अप्रैल 1971 में अलीगढ़ आ गया।

प्रश्न : हमने सुना है पण्डितजी ने सिकन्द्राबाद में कोई विद्यालय भी बनवाया था?

पवन जैन : हाँ, सिकन्द्राबाद में एकबार आचार्य सूर्यसागर महाराज पधारे थे। उनकी भावना थी कि यहाँ पर जैन समाज का एक विद्यालय प्रारम्भ हो, किन्तु समाज के कार्यकर्ता इस जिम्मेदारी को वहन करने में स्वयं को असमर्थ महसूस कर रहे थे। तब पण्डितजी ने विद्यालय खोलने के संकल्प को लेकर भूख हड़ताल कर दी, तीन दिन के पश्चात् समाज ने विद्यालय खोलने का निर्णय लिया, तभी उन्होंने अन्न-जल ग्रहण किया। आज वह विद्यालय इण्टर कॉलिज के रूप में कार्य कर रहा है। हमें इस बात का परिज्ञान तब हुआ, जब इस विद्यालय के स्वर्णजयन्ती प्रसङ्ग पर हमें ततसम्बन्धी सूचना वहाँ के कर्णधारों ने दी। सन् 1999 में उस कार्यक्रम में पण्डितजी के साथ में भी सम्मिलित हुआ था। सभी कार्यक्रम पिताजी के सान्निध्य में हुए थे। आज भी वहाँ पिताजी के नाम का बोर्ड लगा हुआ है।

प्रश्न : क्या पण्डितजी में धार्मिक संस्कार बचपन से ही थे ?

पवन जैन : उनमें धार्मिक विचारधारा तो बचपन से ही थी, क्योंकि हमारे दादाजी व्रती और धार्मिक व्यक्ति के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त थे, उनका प्रभाव भी पिताजी पर था। परन्तु उनके धार्मिक संस्कारों को सही दिशा तो पूज्य गुरुदेवश्री के सम्पर्क के बाद ही मिली है।

प्रश्न : पूज्य गुरुदेवश्री का परिचय उन्हें कैसे हुआ था ?

पवन जैन : बात लगभग सन् 1952-53 की है। जब वे गिरनार यात्रा पर गये थे। वहाँ अहमदाबाद में कुछ सहयात्रियों द्वारा गुरुदेवश्री के बारे में कि गयी चर्चा से वे गुरुदेवश्री के प्रति आकर्षित हुए और सोनगढ़ पहुँचे। पिताजी स्वयं बताते हैं कि जैसे ही मैं सोनगढ़ पहुँचा, मुझे लगा, मानो मेरे सिर से बहुत भारी वजन उतर गया हो और गुरुदेवश्री प्रथम दर्शन प्राप्त होते ही उन्हें लगा कि मुझे जिसकी तलाश थी, वह आज पूरी हो गयी। यद्यपि उस समय गुजराती भाषा में गुरुदेव के प्रवचन होने से कुछ भी समझ में नहीं आया था।

प्रश्न : दुबारा गुरुदेवश्री से उनका मिलना कब हुआ ?

पवन जैन : इस यात्रा संघ से बुलन्दशहर वापस आने के पश्चात् कुछ दिनों बाद डेढ़ महीने के लिए सोनगढ़ पहुँचे लेकिन भाषा की भिन्नता एक समस्या के रूप में सामने आयी, किन्तु गुरुदेवश्री के प्रति श्रद्धा और समर्पण का भाव मजबूत हुआ। जब तीसरी बार 1956में ढ़ाई महीने के लिए सोनगढ़ पहुँचे, तो वहाँ गुरुदेवश्री के अतिरिक्त श्रीरामजीभाई, श्री खेमचन्दभाई से भी सम्पर्क हुआ, और यहीं उनके अध्ययन-अध्यापन का सिलसिला प्रारम्भ हुआ, जिसकी परिणति आगे चलकर सम्पूर्ण देश में तत्त्वप्रचार, जैन सिद्धान्त प्रवेशरत्नमाला के सात भाग आदि के रूप में हमारे सामने हैं।

प्रश्न : गुरुदेवश्री बुलन्दशहर भी तो आये हैं ?

पवन जैन : हाँ, यात्रा के दौरान गुरुदेवश्री बुलन्दशहर पधारे थे। उस समय पिताजी का उत्साह देखते ही बनता था। पूरा समाज गुरुदेव के स्वागत में खड़ा था। साथ ही कई अधिकारी भी। जब भी पूज्य पिताजी, गुरुदेवश्री के बुलन्दशहर आने की घटना अपनी कक्षाओं में सुनाते थे, तो उनका उत्साह देखने योग्य होता था।

प्रश्न : क्या पण्डितजी, सोनगढ़ में भी धार्मिक कक्षाएँ संचालित करते थे।

पवन जैन : पण्डितजी का आवास, सोनगढ़ प्रवचन हॉल हुआ करता था। वे रात्रि में बारह बजे तक स्वयं का अध्ययन करते और प्रात: चार-पाँच बजे उठकर समीपवर्ती मुमुक्षुओं को जगाकर कक्षा लिया करते थे; गुरुदेवश्री के प्रवचनों के अतिरिक्त समय में वे वहाँ पर मुमुक्षुओं के साथ पारस्परिक चर्चा/कक्षा का संचालन किया करते थे। उनकी कक्षाओं में वर्तमान दिगम्बर जैन मुमुक्षु समाज के अनेकों विद्वान, श्रेष्ठी, आत्मार्थी बन्धु लाभान्वित हुए हैं।

प्रश्न : हमने तो सुना है कि एक बार मुनि बनने का भाव भी जागृत हुआ था।

पवन जैन : हाँ, यह बात सच है, गुरुदेवश्री के दर्शनों से पूर्व एक बार उन्होंने किन्हीं मुनिराज से मुनि दीक्षा के लिए निवेदन किया तो उत्तर में उन मुनिराज ने कहा कि ठीक है, सम्यग्दर्शन तो तुम्हें है ही; अब तुम मुनिपना अङ्गीकार कर लो। उनकी यह बात सुनते ही पिताजी एकदम पीछे हठ गये, और उन्हें लगा कि यह तो धोखा है।

प्रश्न : जब पण्डितजी को गुरुदेव के अध्यात्म का रङ्ग लगा तब उनकी व्यवसायिक स्थिति का क्या स्वरूप हुआ।

पवन जैन : मैंने पहले भी कहा, कि वे अपने कार्य के प्रति सदैव निष्ठावान रहे हैं। जब वे बुलन्दशहर रहते तो अपने अध्ययन-मनन के अतिरिक्त पूरी मेहनत से रात्रि को दस-ग्यारह बजे तक दुकान पर काम किया करते थे, किन्तु जिस-दिन उन्हें सोनगढ़ या अन्यत्र कहीं स्वाध्याय के लिए जाना होता तो कितना भी बड़े से बड़ा काम उनके लिए कभी अवरोध बनकर सामने नहीं आ सका।

प्रश्न : पण्डितजी के निरपेक्षवृत्ति का कोई प्रसङ्ग जो आपके प्रेरक हुआ हो बतायें ?

पवन जैन : मेरी छोटी बहिन विनय की मृत्यु का समाचार पिताजी को सोनगढ़ में प्राप्त हुआ, उनका सम्भवत: अहमदाबाद जाने का कार्यक्रम था। वे पूज्य गुरुदेव को वन्दन करने गये, गुरुदेवश्री को भी इस घटना का ज्ञान हो चुका था। गुरुदेव ने कहा - आपकी पुत्री का

स्वर्गवास हो गया है ? पिताजी ने कहा – वह तो जो होना था, हो गया – ऐसा कहकर, वन्दन करके बिना किसी विकल्प के अपने निर्धारित कार्यक्रमानुसार अहमदाबाद, स्वाध्याय कराने गये। वहाँ से हमें पत्र लिखा – 'विनय की मृत्यु हुई है, उसने धर्म नहीं किया; यदि धर्म करती हो अच्छा था। हमें उसके सुसरालवालों से कोई विवाद नहीं करना है।' क्योंकि हम यह समझते थे कि शायद डिलीवरी के समय में कोई लापरवाही की वजह से उसकी मृत्यु हुई है।

प्रश्न : पण्डितजी वर्ष में कितने समय सोनगढ़ तथा अन्य मण्डलों में रहते थे।

पवन जैन : प्रारम्भ में तो इसका कोई निश्चित समय नहीं था। जब उनका मन होता, वे दुकान आदि का कार्य छोड़कर चल देते थे। निश्चितरूप से यह तो मैं भी नहीं बता सकता कि कितना समय घर पर और कितना समय बाहर रहते थे। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि उनका ज्यादातर समय धार्मिक कार्यों में बाहर ही व्यतीत होता था। सन् 1965 में तो उन्होंने दुकान का सारा कार्यभार भाईसाहब श्री शीतलप्रसादजी को सँभला दिया था।

प्रश्न : गुरुदेवश्री के प्रति पण्डितजी के मन में कैसे भाव थे ?

पवन जैन : पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति उनका जो अहो भाव ! था, उसे हम उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार समझ सकते हैं – वे कहते हैं कि यदि गुरुदेव मुझसे अन्धे कुँए में गिरने को कह दें तो मुझे दूसरे समय उसके लिए सोचना नहीं पड़ेगा। गुरुदेव श्री के प्रति उनके अहो भाव ! तो आपको इस मङ्गल–सर्मपण ग्रन्थ में प्रकाशित पत्रों आदि से स्वयं ही ज्ञात हो जाएँगे। वास्तव में इतना कहना पर्याप्त होगा कि **यदि हम पण्डितजी की तुलना द्रोणाचार्य के शिष्य एकलव्य से करें तो निश्चित ही यह अतिश्योक्ति नहीं होगी।**

प्रश्न : पण्डितजी के प्रति गुरुदेवश्री के कैसे भाव थे ?

पवन जैन : गुरुदेवश्री, पिताजी को एक सच्चा व्यक्ति समझते थे और जब किसी प्रसङ्ग पर उन्हें कोई जानकारी प्राप्त करनी होती तो वे पिताजी से पूछ लेते थे और पिताजी ने जो कहा हो, उसे पूरी तरह प्रमाणिक मानते थे। मुझे याद है एक प्रसङ्ग; जब अशोकनगर के किसी भाई ने गुरुदेवश्री से कहा हमारे – यहाँ पण्डित कैलाशचन्द्रजी बुलन्दशहरवाले छह महीने रहे हैं और हमें धर्म पढ़ाया है। गुरुदेवश्री ने तुरन्त कहा – क्या फिर भी तुम्हारे यहाँ मिथ्यात्व रह गया है ? गुरुदेवश्री का यह वाक्य भी पिताजी के प्रति उनके विश्वास को दर्शाने के लिए पर्याप्त है। हाँलाकि पिताजी एकदम अलिप्त व्यक्तित्व के धनी होने से कभी गुरुदेवश्री के सामने दिखायी नहीं पड़ते, परन्तु एक मूक सेवक की तरह उन्होंने जिनधर्म प्रभावना के लिए जो कार्य किया, उसकी गुरुदेवश्री के नजरों में बहुत कीमत थी।

प्रश्न : क्या आप भी कभी अपने पिताजी के साथ सोनगढ़ गए हैं ?

पवन जैन : क्यों नहीं, जब मैं बहुत छोटी उम्र का था, तब पिताजी अपने साथ कई-बार मुझे सोनगढ़ लेकर गए हैं। मैं सोनगढ़ में पिताजी के पास ही अपना बिस्तर लगाकर प्रवचन मण्डप मैं सो जाता था। जब भी पूज्य गुरुदेवश्री मुझे देखते तो उनका एक फिक्स वाक्य हुआ करता था 'आ कैलाशचन्द्रनौ दीकरौ छै:', हम बच्चे लोग उस समय गुरुदेवश्री के साथ घूमने जाया करते थे और मैं तो, गुरुदेवश्री कब प्रवचन करके बाहर निकलें और मैं उन्हें उनकी लकड़ी और चप्पल दूँ – ऐसी उत्कंठा से टकटकी लगाकर उन्हें देखते रहता था। गुरुदेवश्री का सभी बच्चों से बहुत लगाव था। पिताजी के द्वारा उस समय में दिए गये धार्मिक संस्कारों का प्रताप है कि अपने जीवन की कुछ समयावधि मैंने धर्म किंचित दूर जाने पर भी, मैं इतनी दूर नहीं जा सका कि जहाँ से लौटकर वापस न आ सकूँ और यही कारण है कि आज मैं आपके सामने जिनधर्म – सेवक के रूप में उपस्थित हूँ।

प्रश्न : क्या बचपन में सोनगढ़ प्रवास के समय आप बहिनश्री बहिन से भी मिले हैं ?

पवन जैन : जब मैं बचपन में सोनगढ़ जाता था, तब दोनों बहिनों — बहिनश्री चम्पाबेन एवं बहिनश्री शान्ताबेन से भी मिलना होता था। मुझे दोनों बहिनों के प्रति मुझे आदरभाव था, किन्तु बहिनश्री चम्पाबेन की वैराग्यमुद्रा, गम्भीरता आदि गुणों का मुझ पर विशेष प्रभाव पड़ा।

प्रश्न : पण्डितजी के द्वारा लिखी हुई पुस्तकें, क्या गुरुदेवश्री की उपस्थिति में ही प्रकाशित हो गयीं थीं ? उन पर गुरुदेवश्री की क्या प्रतिक्रिया थी ?

पवन जैन : इन जैन सिद्धान्त प्रवेशरत्नमाला पुस्तकों का प्रकाशन सन् 1969-70 मैं सर्व प्रथम देहरादून मुमुक्षु मण्डल द्वारा वहाँ के आत्मार्थी श्री रूपचन्द जैन माजरावालों की प्रेरणा से तथा नेमचन्द जैन बन्धु के प्रयत्नों से हुआ था। पण्डितजी ने कभी भी पुस्तक लिखने के उद्देश्य से कुछ नहीं लिखा था। वे तो सोनगढ़ में संचालित कक्षाओं को अपनी बोलचाल की भाषा में सबको पढ़ाने के लिए और स्वयं अध्ययन करने के लिए लिख लेते थे। **जब इन पुस्तकों का प्रकाशन होकर ये सभी पूज्य गुरुदेवश्री को मिलीं तो उन्होंने इनको पढ़ा और कहा - इन पुस्तकों में तो जो हमने पढ़ाया है, वही सब बातें; इसलिए इन्हें अपनी पुस्तकों में शामिल कर लो।**

इसके बाद एक बार आगरा से भी इन पुस्तकों का प्रकाशन हुआ है, लेकिन अनवरत

प्रकाशन देहरादून से ही हुआ है और अभी नया संस्करण भी देहरादून मुमुक्षु मण्डल द्वारा ही प्रकाशित हो रहा है। जिसे भाषा एवं व्याकरण आदि की दृष्टि से यतकिंचित सम्पादित किया गया है। जब तक पिताजी स्वस्थ रहे और देश में कक्षाएँ चलाते रहे, वहाँ के मण्डलों में इन पुस्तकों के सैट लगभग सर्वत्र उपलब्ध होते हैं।

प्रश्न : आपने भी तो जिनागमसार लिखा है ? उसे लिखने की भावना कैसे जागृत हुई ?

पवन जैन : मेरी भावना थी कि पण्डितजी ने अपनी पुस्तकों में पूरा तत्त्वज्ञान भर दिया है, परन्तु उसके आगमप्रमाण लोग माँगते थे। मैंने कई बार पिताजी से कहा भी; किन्तु वे इतना ही कहते – क्या ये पुस्तकें, शास्त्र नहीं हैं ? तत्पश्चात् लगभग 1993-94 में मैंने देवेन्द्र जैन, बिजौलियाँ को अपने यहाँ बुलाकर इस कार्य के लिए कहा, किन्तु किन्हीं कारणोंवश वह कार्य नहीं हो सका। फिर जब मैं अपनी बाईपास सर्जरी कराकर आया और स्वाध्याय प्रारम्भ किया, तो मुझे यह कार्य करने का भाव आया। उस समय मैंने सोलह-सोलह घण्टे प्रतिदिन यह कार्य किया; इस कार्य में मुझे अपनी सहधर्मिणी आशा एवं धर्म बहिन बीना जैन, देहरादून का भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ।

इस ग्रन्थ के तैयार होने पर इसकी छह प्रतियाँ देश के मूर्धन्य विद्वानों को इस आशय से भेजी कि कहीं कोई भूल न रह जाए। उनमें सभी ने इस कार्य की प्रशन्सा तो की, किन्तु पूरे ग्रन्थ को पढ़कर एक-एक पेज पर हस्ताक्षर करके भेजने का कार्य डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल, जयपुर ने किया; डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री, नीमच एवं श्री नागरदास मोदी, सोनगढ़ ने पूरे ग्रन्थ को पढ़ा, जिसकी मुझे प्रसन्नता हुई।

प्रश्न : पण्डितजी की इस पर क्या प्रतिक्रिया रही ?

पवन जैन : पिताजी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने सभी मण्डलों मैं व्यक्तिगत पत्र के साथ यह ग्रन्थ पहुँचाया। सच तो यह है कि इस ग्रन्थ के बनने में मूलकारण पिताजी एवं पूज्य गुरुदेवश्री ही है। मैंने पिताजी के उपकार का सर्व प्रथम स्मरण किया है।

प्रश्न : हमने सुना है पण्डितजी को सम्यग्दर्शन प्राप्त है और उन्होंने इस घटना को पूज्य गुरुदेवश्री के समक्ष भी प्रस्तुत किया है। क्या इस सम्बन्ध में आपको कोई जानकारी है ?

पवन जैन : यद्यपि मैं अपने मुँह से इस विषय में कुछ कहना नहीं चाहता हूँ क्योंकि यदि उन्हें सम्यग्दर्शन है तो मेरे ना कहने से वह चला नहीं जाएगा और यदि नहीं है तो मेरे हाँ कह देने से हो नहीं जाएगा; इसलिए प्रथम तो हमें इस मुद्दे पर चर्चा ही नहीं करनी चाहिए।

फिर भी वे स्वयं इस बात को कहते थे, और आज देश में अनेक ऐसे लोग हैं; जो उन्हें ज्ञानी के रूप में स्वीकार करते हैं; जानते हैं; आदर करते हैं। इस बात का जिक्र यद्यपि उन्होंने अपने एक पत्र में जो शायद 1968 का है, उसमें किया है, और **एक बार जब वे सोनगढ़ में बहुत बीमार हुए, तब उन्हें प्रवचन मण्डप के एक कमरे में रहने को स्थान दिया गया। उस समय मैं भी उनके साथ वहाँ पर था। गुरुदेवश्री को उनकी बीमारी के समाचार ज्ञात हुए, तो दोपहर में अनायास अपने आवास से चलकर गुरुदेवश्री, पिताजी के तबियत पूछने और उन्हें सम्बोधन देने के भाव से वहाँ पधारे। गुरुदेवश्री का आना मानो पण्डितजी के लिए तो साक्षात् कल्पवृक्ष जैसा.... पिताजी को उस समय ऐसा लगता था कि सम्भवतः अब इस देह की स्थिति पूर्ण हो सकती हैं। अतः जैसे ही गुरुदेवश्री उनके कक्ष में पधारे, पिताजी एकदम कमजोर शारीरिक स्थिति के बाबजूद उत्साह से उठ खड़े हुए, और उनकी आँखों से हर्षाश्रु निकल पड़े। गुरुदेवश्री के चरणों में अपना सिर रखकर उनके उपकार अभिव्यक्त करते हुए पिताजी ने उस समय अपने सम्यग्दर्शन की बात गुरुदेवश्री को बतायी। यद्यपि उस समय गुरुदेवश्री, पिताजी, और मेरे अलावा कमरे में कोई नहीं था, लेकिन बाहर काफी लोग एकत्रित थे। सम्भवतः किसी के कान में पिताजी के शब्द पड़े हों और लोग उनकी जयकार करने लगे। शाम को तत्त्वचर्चा के समय पूज्य गुरुदेवश्री ने इस घटना का उल्लेख करते हुए यह कहा कि आज उन्हें पण्डित कैलाशचन्द्रजी ने सम्यग्दर्शन होने की बात कही है। इस घटना का मैं प्रत्यक्ष साक्षी रहा हूँ।**

प्रश्न : पण्डितजी कक्षा पद्धति किस प्रकार की थी ?

पवन जैन : उन्होंने सामान्य बोलचाल की भाषा में तत्त्वज्ञान का अभ्यास कराया है। रही बात उनके प्रभाव की, तो इस सम्बन्ध में मैं इतना ही कहना चाहूँगा – मैं भी तब तक उनके प्रभाव से अज्ञात था, जब तक मङ्गलायतन नहीं बना था। जब मङ्गलायतन के पञ्च कल्याणक का आमन्त्रण देने हम पिताजी के साथ अपनी टीम लेकर पूरे देश में गए, तो सब जगह पण्डितजी के प्रति आदर और सम्मान का भाव देखकर मुझे भी आश्चर्य लगा। वास्तव में उन्होंने जिस निस्पृहभाव से जो कार्य किया है, यह उसी का प्रतिफल है कि देश के सम्पूर्ण भाग में सामान्य व्यक्ति से लेकर बड़े-बड़े विद्वान भी उनके प्रति आदरभाव रखते हैं।

प्रश्न : क्या पण्डितजी किसी सामाजिक सम्मान को स्वीकार करते थे ?

पवन जैन : आप क्या बात करते हैं ? सम्मान को स्वीकार करने की बात तो बहुत दूर; कोई उनके सम्मान की योजना तक नहीं बना सकता था। वे सदा ही सम्मान के प्रति उपेक्षाभाव

रखते थे। मुझे याद है वह प्रसङ्ग, जब मङ्गलायतन में शिलान्यास के बाद आयोजित किसी कार्यक्रम में श्री कुन्दकुन्द-प्रवचन-प्रसारण-संस्थान, उज्जैन द्वारा पण्डितजी के प्रस्तावित सम्मान के अवसर पर मुझे उनके साथ इसलिए लगातार रहना पड़ा कि कहीं वे इस प्रसङ्ग पर उद्वेलित न हो जाएँ, और जब उनको सम्मान के रूप में जबरदस्ती मंच पर बैठाया गया, तो उस कार्यक्रम में खींचे गए फोटो से उनके चेहरे के भाव आप स्वयं पढ़ सकते हैं।

प्रश्न : जब पण्डितजी ने व्यवसाय बन्द कर दिया, तो अपने जीवन निर्वाह के लिए उनकी क्या आर्थिक व्यवस्था थी ? क्या उन्होंने समाज का आर्थिक योगदान स्वीकार किया ?

पवन जैन : पण्डितजी जहाँ भी गए, उन्होंने कभी भी कहीं भी आने-जाने का मार्ग व्यय तक भी नहीं लिया है। यह तो ठीक, किन्तु यदि वे अपने लिए दवा या पोस्टकार्ड भी मँगाते थे तो उसे तब तक स्वीकार नहीं करते थे, जब तक लानेवाला उसका मूल्य न ले लेवे। पण्डितजी ने जब व्यवसाय का सम्पूर्णरूप से परित्याग किया और अपनी दुकान की श्री शीतलप्रसादजी को सँभला थी, तब उन्होंने अपने जीवन निर्वाह के लिए कुछ प्रतिशत हिस्सेदारी रखी थी, जिससे उन्हें जीवन निर्वाह की परेशानी नहीं आयी। हम यथासम्भव इस बात का ध्यान रखते थे। उनका ऐसा मानना था कि मैं जितने दिन समाज में रहता हूँ तो उसके भोजन के पैसे भी मुझे देना चाहिए। इस भावना से वे उस राशि को कक्षा में सही प्रश्नोत्तर सुनानेवालों को इनाम में बाँट देते थे। उनका भाव सबको धर्म के प्रति प्रोत्साहित करने का रहता था।

प्रश्न : उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत कब अङ्गीकार किया था और इससे परिवार में क्या प्रतिक्रिया हुई ?

पवन जैन : इस सम्बन्ध में मुझे विशेष ज्ञान नहीं है किन्तु जो कुछ मैंने सुना है उसका सार इतना ही है कि मेरे जन्म के कुछ ही समय पश्चात् सन् 1952-53 में उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत अङ्गीकार कर लिया था।

प्रश्न : यों तो पण्डितजी ने सम्पूर्ण देश में भ्रमण करके तत्त्वज्ञान की ज्योति जलाई है, किन्तु वे विशेषरूप से कहाँ-कहाँ अधिक रहे और उसका क्या प्रभाव वहाँ के समाज पर पड़ा ?

पवन जैन : उनके कार्यक्रम की एक डायरी, जिसमें वे अपने पूरे कार्यक्रमों को नोट किया करते थे; हमारे पास थीं किन्तु अभी वह उपलब्ध नहीं है। उससे पता चलता है कि

उन्होंने लगभग चार-पाँच सौ स्थानों पर जाकर तत्त्वज्ञान की शिक्षण कक्षायें लगायीं हैं। उनके महत्वपूर्ण स्थानों मैं, बुलन्दशहर तो था ही, साथ ही देहरादून, बिजौलियाँ, छिन्दवाड़ा, भोपाल, ग्यारसपुर आदि अनेक स्थान रहे हैं, जहाँ उनके प्रभाव से अनकों स्थायी कार्य हुए हैं। जैसे, देहरादून मुमुक्षु मण्डल विशाल स्वाध्यायभवन का निर्माण कराया है। पिताजी का लाभ लेने के उद्देश्य से मैंने वहाँ एक कोठी भी खरीद ली थी। इसी प्रकार बिजौलियाँ मैं पिताजी की प्रेरणा से जिनमन्दिर और स्वाध्यायभवन का निर्माण हुआ है। वहाँ मुझे कई बार जाने का अवसर मिला है। छिन्दवाड़ा तो हम जब मङ्गलायतन की प्रतिष्ठा का आमन्त्रण देने गये थे, स्थानीय समाज ने दो-तीन किलोमीटर दूर आकर हमारी जो आगवानी की थी, वह दृश्य आज भी याद आता है। इसी तरह भोपाल के पण्डित राजमल पवैया जो स्वतन्त्रता संग्राम सैनानी और अनेकों पूजा-विधानों के रचनाकार हैं, पण्डितजी से एक या दो वर्ष ही छोटे थे, वे भी पिताजी को अपना गुरु और मुझे गुरुभाई के रूप में सम्मान देते थे। प्रसङ्ग तो बहुत हैं जो पूज्य पिताजी के, समाज पर प्रभाव को प्रतिध्वनित करते हैं।

प्रश्न : आपने तीर्थधाम मङ्गलायतन जैसी संस्था का निर्माण किया है। क्या उसके पीछे पण्डितजी की प्रेरणा रही है ?

पवन जैन : यद्यपि पिताजी कभी भी इस प्रकार के कार्यों में नहीं पड़ते थे। किन्तु उनकी एक भावना सदा रहा करती है, विश्व के सभी प्राणी वस्तुस्वरूप को पहचाने और सुखी हों। हमने उन्हीं की भावनाओं से प्रेरणा पाकर एक ऐसी संस्था के निर्माण का संकल्प लिया, जो गुरुदेवश्री द्वारा प्रतिपादित तत्त्वज्ञान को सम्पूर्ण विश्व में प्रचारित कर सके। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रभावनायोग और पिताजी के आशीर्वाद से हम इस कार्य में आगे बढ़ रहे हैं। आज मङ्गलायतन में स्थापित श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन को हम पिताजी के स्वप्न के साकाररूप में देखते हैं।

प्रश्न : क्या मङ्गलायतन, पण्डितजी की रीति-नीति पर चल रहा है।

पवन जैन : शत्-प्रतिशत्‌रूप से पिताजी की रीति-नीति चल रहा हो, यह तो हम नहीं कह सकते, लेकिन यथासम्भव उनकी भावनाओं एवं पूज्य गुरुदेवश्री को अग्र रखकर चलने में हम सफल हुए हैं। किसी भी संस्था को शत्-प्रतिशत् निरापदरूप में चला पाना आज के परिवेश में असम्भव नहीं तो कठिन तो है ही, फिर भी हमारा यह प्रयास अवश्य रहता है कि हम कोई भी सिद्धान्त विरुद्ध कार्य न तो स्वयं करें और न करनेवालों के साथ खड़े हों।

प्रश्न : क्या मङ्गलायतन विश्वविद्यालय का निर्माण भी पण्डितजी की प्रेरणा का सुफल है।

पवन जैन : पिताजी कभी लौकिक शिक्षा के चक्कर में नहीं रहे, किन्तु मेरी सदा से एक मान्यता रही है कि उच्चस्तरीय लौकिक शिक्षा के साथ-साथ यदि तत्त्वज्ञान के संस्कार दिए जाएें तो आत्म निर्भर होकर दृढ़तापूर्वक तत्त्वज्ञान का प्रचार-प्रसार करने में विद्वान लोग सफल होंगे और उन्हें तत्त्वज्ञान को अपनी जीविका का साधन नहीं बनाना पढ़ेगा। इसी भावना से हमने श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन और मङ्गलायतन विश्वविद्यालय की स्थापना की थी। इसमें हम कितने सफल होते हैं, यह आनेवाला कल ही बतायेगा, परन्तु इतना निश्चित है कि पवित्र भावनओं से किए गए प्रयासों का फल देर-सवेर अवश्य अच्छा आता है।

प्रश्न : जब आपको आध्यात्मिक रुचि लगी, उसके पहले और बाद के जीवन में आप क्या परिवर्तन महसूस करते हैं ?

पवन जैन : तत्त्वज्ञान के संस्कार तो मुझे पिताजी द्वारा बचपन से ही प्राप्त रहे हैं और छोटी उम्र से ही अनेकबार पूज्य गुरुदेवश्री के सान्निध्य में सोनगढ़ जाना भी हुआ है। बीच में व्यावसायिक प्रवृत्तियों के कारण लगभग बारह से पन्द्रह वर्ष की समयावधि में मैं धार्मिक गतिविधियों से दूर रहा। फिर जब मेरी हार्ट सर्जरी हुई और जीवन की आशा पूर्णत: समाप्त हो गयी थी, किन्तु आयुकर्म के उदय से वापस ऑपरेशन से सकुशल आया, तभी से मेरी जीवन में फिर से धार्मिक मोड़ आया, उस समय पिताजी की मेरी प्रति प्रेमपूर्ण उपेक्षा ने भी मुझे धर्म के मार्ग के प्रति आकर्षित किया। इस प्रकार मेरे जीवन में मैं अपने को धन्य अनुभव करता हूँ कि बालपन के संस्कारों ने मुझे धार्मिक परिधि से बाहर नहीं जाने दिया।

प्रश्न : आपके जीवन पर पण्डितजी के उपकार को आप किस रूप में अनुभव करते हैं ?

पवन जैन : वास्तव में आज मैं जो कुछ भी हूँ, उसका सारा श्रेय पूज्य पिताजी को है। उन्होंने अपनी विषमतम आर्थिक परिस्थिति मैं भी न्याय-नीति और सिद्धान्त का दामन कभी नहीं छोड़ा, उनकी इस प्रवृति की महक मुझमें सदा से रही है। उनकी निर्भीकता, निशंकता और स्पष्टवादिता की छाप भी मुझ पर है। मैंने अपने पिता से बहुत कुछ सीखा है, पाया है। वे लौकिक रिश्ते में पिता होने के साथ-साथ मेरे धर्मशिक्षा गुरु भी हैं। मुझे उनके प्रति सदा ही अहो भाव! रहा है। किन्तु जब मङ्गल-समर्पण ग्रन्थ के प्रकाशन के उद्‌देश्य से उनकी पुरानी

डायरियाँ, पत्र आदि का सूक्ष्मता से अध्ययन का अवसर मिला, तब मुझे उनके ज्ञान और आन्तरिक परिणति के प्रति महिमा में अत्यधिक अभिवृद्धि हुई। मुझे गर्व है कि मैं पण्डित कैलाशचन्द्र जैन का पुत्र हूँ, और वे मेरे पिता हैं। मेरी आन्तरिक भावना तो यह है कि यदि मेरा दूसरा जन्म है तो मुझे पूज्य पण्डित कैलाशचन्द्र ही पिता के रूप में प्राप्त हों।

प्रश्न : आप मङ्गल–समर्पण के माध्यम से समाज को क्या सन्देश देना चाहते हैं ?

पवन जैन : वीतरागी तत्त्वज्ञान का पावन संदेश तो जिनेन्द्र–देव की पावन परम्परा से प्रर्वतमान होता हुआ पूज्य गुरुदेवश्री के माध्यम से हम सब को मिला ही है। पूज्य पिताश्री ने उसी सन्देश को जन–जन तक पहुँचाया है। मेरी भावना है कि सभी मुमुक्षुजन एवं मुमुक्षु संस्थाएँ व्यक्तिगत राग–द्वेष को विस्मृतकर पूज्य गुरुदेवश्री को अग्र रखते हुए, उनके द्वारा प्रतिपादित तत्त्वज्ञान का प्रचार–प्रसार एक मंच पर एक स्वर से अखण्डरूप से करें – यही मेरी प्रशस्त भावना है। ●●

आत्मीयजनों की दृष्टि में पण्डितजी

अध्यात्म मनीषी पण्डित कैलाशचन्द्र जैन ने अपने दृढ़ तत्त्वज्ञान से सम्पूर्ण मुमुक्षु समाज को तो प्रभावित किया ही है; साथ ही उनके परिवारीजन एवं आत्मीयजन भी उनसे प्रेरणा प्राप्त करते रहे हैं। यहाँ पण्डितजी के परिवारीजनों एवं निकटवर्ती आत्मीयजनों के कुछ उद्‌गार प्रस्तुत किये गये हैं। जो पण्डितजी के अन्तरंग में व्याप्त धर्मप्रेम, साधर्मी वात्सल्य और प्रेरणास्पद व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित करते हैं।

— ***सम्पादक***

शिक्षा के प्रति पण्डितजी का दृष्टिकोण

शिक्षा के सम्बन्ध में उनका मन्तव्य एकदम सुस्पष्ट है कि शिक्षा वह है जो जीवन में शान्ति दे, सुख दे, शाश्वत्‌रूप से अतीन्द्रिय आनन्द को प्रदान करे। उस शिक्षा को; जो मात्र लौकिक साधन जुटाये, मात्र पैसा कमाने का साधन बने, उसे वे केवल 'बुद्धि का कचरा' की संज्ञा देते रहे हैं।

— **श्री पवन जैन**

उनके पथ के अनुगामी बनें

मेरे श्वसुर पूज्य पण्डितजी साहब का मेरे जीवन पर महा उपकार है। मैं उनके द्वारा निर्देशित मार्ग पर आगे बढ़ूँ; साथ ही मेरा पुत्र और पौत्र भी उनके आदर्शों पर निरन्तर चलते रहें – इसी भावना से विनम्र विनयांजली समर्पित है।

— **श्रीमती आशा, पवन जैन**

उनका सान्निध्य : हमारा सौभाग्य

पूज्य मामाजी पण्डित कैलाशचन्द्रजी में प्रारम्भ से ही धर्म के प्रति अपार आस्था रही है। हमारा सौभाग्य है कि हमें प्रारम्भ से ही उनका सान्निध्य प्राप्त हुआ और धर्म के सम्बन्ध में कुछ जानने को मिला। हम उनके द्वारा बताये गये जैन सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार को आगे बढ़ाने में सफल होगें – ऐसी भावना है।

मैं अपने पूरे परिवार की ओर से उनके प्रति हार्दिक विनयांजली समर्पित करता हूँ।

— **श्री मुकेश जैन, अलीगढ़**

उनके बताये मार्ग पर ही चलूँ....

मेरे पूज्य दादाश्री ने मुझे बचपन से धर्म के संस्कार दिये हैं। उन्हीं के आशीर्वाद एवं पिताश्री पवन जैन की दूरदर्शी सोच का परिणाम है तीर्थधाम मङ्गलायतन।

तीर्थधाम मङ्गलायतन विशुद्ध आत्मकल्याण का स्थान है। यहाँ संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के माध्यम से धर्म और शिक्षा का अद्‌भुत समन्वय स्थापित किया गया है। सच तो यह है कि बिना धर्म के शिक्षा, मात्र मुर्दे का शृंगार है।

मेरे पूज्य दादाजी, मात्र लौकिक ज्ञान को 'बुद्धि का कचरा' संज्ञा देते रहे हैं। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि धर्म हीन जीवन, पशुतुल्य है।

मैं उनके बताये मार्ग पर निरन्तर चलता रहूँ – यही मेरी भावना है। **— श्री स्वप्निल जैन**

मेरा परम सौभाग्य

उनकी देव-शास्त्र-गुरु के प्रति दृढ़ श्रद्धा को देखकर मुझे भी उस मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती है। मेरा सौभाग्य है कि मैं इस परिवार में आयी, जहाँ पण्डितजी मुझे दादाजी के रूप में प्राप्त हुए। **—श्रीमती प्रिया, स्वप्निल जैन**

हमारे मण्डल के प्राण

पूज्य पण्डितजी का देहरादून में आगमन हुआ, वे धर्मात्मा जीव हैं। उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा उद्‌घाटित जैन धर्म के सिद्धान्तों का जोरदार प्रचार किया और पूरी समाज में यह तत्त्वज्ञान पहुँचाया। वे देहरादून मुमुक्षु मण्डल की धड़कन हैं, प्राण हैं और यह मण्डल उनका बालक है। पण्डितजी अथाह करुणा के स्रोत हैं। **— श्री नेमचन्द्र जैन बन्धु, देहरादून**

पूज्यश्री का परम उपकार

मेरे आदरणीय धर्म पिता पण्डित कैलाशचन्द्रजी का हमारे पूरे परिवार और मण्डल के प्रति महान उपकार है। पण्डितजी ने कहा – यदि विश्व में शान्ति आ सकती है तो जैनधर्म से। उन्होंने जैनधर्म के सभी सिद्धान्तों का सात भागों के माध्यम से ज्ञान कराया है। उनका हमारे जीवन पर अनुपम उपकार है। उन्होंने मार्ग बताया है, पुरुषार्थ तो हमें ही करना है।

पूज्यश्री की जन्म शताब्दी के अवसर पर शत्-शत् नमन – शत्-शत् नमन।

— श्रीमती वीना जैन, देहरादून

मङ्गल समर्पण

हम भी मुक्तिमार्ग में प्रयाण करें

उन्होंने हमें जीवन भर जो सिखाया, हम उसी पर चलने का प्रयत्न कर रहे हैं। हमारा यह महाभाग्य है कि हम पण्डितजी के परिवार के सदस्य हैं। हम सभी मुक्तिमार्ग में प्रयाण करके उनके साथ ही मुक्तिपुरी में वास करें – यही भावना है।

— श्रीमती राजरानी अनिल जैन, बुलन्दशहर

— श्रीमती साधना सुनील जैन, बुलन्दशहर

घर-घर में जिनवाणी

आदरणीय पण्डित कैलाशचन्द्रजी की सदा से एक भावना रही है कि प्रत्येक घर में जिनवाणी की स्थापना एवं उसका स्वाध्याय होना चाहिए; साथ ही प्रत्येक तीर्थस्थल एवं धर्मायतन पर पाठशाला की समुचित व्यवस्था होना चाहिए। जिस घर में जिनवाणी की स्थापना और स्वाध्याय की परम्परा नहीं है, वह घर तो श्मशानतुल्य है। पण्डितजी की इन्हीं प्रेरणाओं के फलस्वरूप तीर्थधाम मङ्गलायतन में प्रारम्भ से ही श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन की स्थापना की गयी है। हम भी पण्डितजी से प्रेरणा पाकर स्वाध्याय के प्रति कटिबद्ध हों, यही भावना है।

— पण्डित अशोक लुहाड़िया, तीर्थधाम मङ्गलायतन

परम-परम उपकार

परम श्रद्धेय पण्डित कैलाशचन्द्रजी जब सन् 1982 में पहली बार हमारे नगर में पधारे, तब उनका सर्व प्रथम निवास हमारे घर पर रहा। उस समय हम नये-नये मुमुक्षु बने थे किन्तु तत्त्व की विशेष रुचि नहीं थी। पण्डितजी के, घर पर निवास करने से हमारे पूरे परिवार को उनका विशेष लाभ हुआ और आज पूरा परिवार धर्म के मार्ग पर लगा हुआ है। पण्डितजी की प्रेरणा से हमारे घर पर स्वाध्याय कक्ष की स्थापना हुई, जिसमें हम सभी परिवार के सदस्य मिलकर प्रातः काल सामूहिक स्वाध्याय करते हैं एवं जिनमन्दिर में भी प्रतिदिन तीन समय स्वाध्याय का लाभ अर्जित करते हैं। इस प्रकार पण्डितजी का हमारे परिवार पर परम-परम उपकार है। उनके इस उपकार के प्रति हार्दिक भाव-सुमन अर्पित करता हूँ।

— छगनलाल जैन धनोप्या एवं परिवार, बिजौलियां (राज.)

●●